जैन महापुराण में ब्राह्मणीय परम्परा के देवी-देवता

कमल गिरि

भारतीय संस्कृति के विश्वकोष-रूप पुराण साहित्य में कथाओं के माध्यम से तत्कालीन धार्मिक जीवन के साथ-साथ सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और कलापरक विषयों की भी विस्तारपूर्वक चर्चा मिलती है। ब्राह्मणीय और दाक्षिणात्य जैन, दोनों ही परम्पराओं में विपुल संख्या में पुराणों की रचना की गयी जिन्हें उत्तरकी जैन परम्परा में चरित या चरित्र कहा गया। जैन पुराणों में **महापुराण** सर्वाधिक विस्तृत एवं महत्त्वपूर्ण है, जो **आदिपुराण** (लगभग ८३७ ई०) और **उत्तरपुराण** (लगभग ८५० ई०) दो खण्डों में विभक्त है। इन पुराणों के कर्ता क्रमशः पञ्चस्तूपान्वय के आचार्य जिनसेन और उनके शिष्य गुणभद्र हैं।

महापुराण में एक ओर जैनधर्म एवं परम्परा के मूलभूत तत्त्वों की निष्ठापूर्वक चर्चा की गयी है और दूसरी ओर उनके कर्त्ताओं के व्यापक चिन्तन के कारण वैदिक और ब्राह्मण परम्परा के साथ पूरा समन्वय स्थापित करने की भी चेष्टा की गयी है। इसी कारण **महापुराण** में ब्राह्मण एवं लौकिक परम्परा के सर्वमान्य देवी-देवताओं का अनेक स्थानों पर उल्लेख हुआ है[1]। इन ग्रन्थों में शिव, ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, वैश्रवण, तथा राम, कृष्ण, श्री, बुद्धि, कीर्ति, अज्जा, (आर्या, पार्वती या चण्डि), तदुपरान्त लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा तथा गन्धर्व, पितृ, नाग, लोकपाल जैसे देवी-देवताओं की चर्चा, और कभी-कभी उनके कुछ लक्षणों का भी निरूपण हुआ है जो नवीं शती ई० में ब्राह्मण और जैन धर्मों के सौहार्दपूर्ण अन्तर्सम्बन्धों का साक्षी है[2]। **महापुराण** के अतिरिक्त अन्य जैन ग्रन्थों में भी ऐसे प्रचुर उल्लेख हैं[3]। विशेषकर के उत्तर की जैन शिल्पशास्त्रीय परम्परा एवं मूर्त उदाहरणों में अष्टदिक्पाल, नवग्रह, क्षेत्रपाल तथा गणेश आदि का भी निरूपण किया गया[4]। प्रस्तुत लेख में मुख्यतः जैन **महापुराण** में वर्णित ब्राह्मणीय देवी-देवताओं की चर्चा की गयी है।

आदिपुराण के २४वें और २५वें पर्वों में भरत और सौधर्मेन्द्र द्वारा ऋषभदेव के क्रमशः १०८ और १००८ नामों से स्तवन तथा पूजन की चर्चा है। इन नामों में सर्वाधिक ब्राह्मण धर्म के त्रिपुरुषदेव (शिव, विष्णु एवं ब्रह्मा) तथा कुछ अन्य से सम्बन्धित हैं। शिव के नामों में स्वयंभू, शंभु, शंकर, त्रिनेत्र, त्रिपुरारि, त्रिलोचन, शिव, भूतनाथ, विश्वमूर्ति, कामारि, महेश्वर, महादेव, मृत्युञ्जय, हर, अष्टमूर्ति, त्र्यम्बक, त्र्यक्ष, अर्धनारीश्वर, अधिकान्तक, सद्योजात, वामदेव, अघोर और ईशान मुख्य हैं[5]। इस सन्दर्भ में पुष्पदन्त कृत अपभ्रंश **महापुराण** (१०वीं शताब्दी का पूर्वार्ध) का उल्लेख भी महत्त्वपूर्ण है जिसमें शिव से सम्बन्धित कुछ आयुधादि (कंकाल, त्रिशूल, नरमुण्ड, सर्प) का भी उल्लेख हुआ है[6]। यहां विष्णु के नामों में जगन्नाथ, वामनदेव, लक्ष्मीपति और ब्रह्मा के नामों में ब्रह्मा, पितामह, धाता, विधाता, चतुरानन उल्लेखनीय हैं। अन्य प्रसंगों में हिरण्यगर्भ, इन्द्र (महेन्द्र, सहस्राक्ष), सूर्य (आदित्य), कुबेर, राम एवं कृष्ण जैसे देवों तथा इन्द्राणी, लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा, विन्ध्यवासिनी देवियों के नामोल्लेख और कभी-कभी लक्षण भी सन्दर्भगत पुराणों में मिलते हैं[7]।

आदिपुराण ऋषभनाथ के जीवनचरित से सम्बन्धित है जिसमें शिव के सर्वाधिक नामों के माध्यम से ऋषभ का स्तवन हुआ है जो प्राचीन परम्परा में शिव और ऋषभदेव के एकीकृत स्वरूप का संकेत देता है। शास्त्रीय परम्परा में ऋषभ के साथ जटा, वृषभ लाञ्छन और यक्ष के रूप में गाय के मुखवाले तथा परशुधारी गोमुख यक्ष की कल्पना से यह अन्तर्सम्बन्ध पूरी तरह स्पष्ट हो जाता है। इसे मूर्त उदाहरणों में भी देखा जा सकता है। इसी प्रकार वैदिक वाङ्मय, **महाभारत** एवं पुराणों में शिव को अनेकशः ऋषभदेव नाम से सम्बोधित किया गया है[8]। सम्भवतः शिव का महायोगी रूप ही जैन तीर्थंकर ऋषभदेव के सन्दर्भ में निरूपण का मुख्य आधार बना। शिव का व्यापक आधार **महापुराण** में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अजितनाथ और सुमतिनाथ तीर्थंकरों के साथ हर एवं महेश जैसे शिव के नामों के रूप में भी देखा जा सकता है। कैवल्य-प्राप्ति के पश्चात् इन्द्र द्वारा अजितनाथ के स्तवन में उन्हें भूतनाथ एवं नागों को धारण करनेवाला, त्रिनेत्र और भस्म से शोभित शरीरवाला बताया गया है। शिव के अतिरिक्त अजितनाथ को विष्णु के कुछ नामों से भी अभिहित किया गया है।

उत्तरपुराण में पांचवें तीर्थंकर सुमतिनाथ के पंचकल्याणकों के सन्दर्भ में जिन पांच नामों का उल्लेख हुआ है वे स्पष्टतः पंचानन शिव के महेश रूप से सम्बन्धित हैं, जिनकी स्वतन्त्र मूर्तियाँ एलिफण्टा, एलोरा (गुफा १६), ग्वालियर जैसे स्थलों से मिली हैं। सुमतिनाथ को गर्भकल्याणक, जन्माभिषेक, दीक्षा कैवल्यप्राप्ति एवं निर्वाण के अवसरों पर क्रमशः सद्योजात, वाम, अघोर, ईशान और तत्पुरुष नामों से अभिहित किया गया है। इस सन्दर्भ में तीर्थंकर श्रेयांसनाथ के यक्ष के रूप में ईश्वर नामधारी यक्ष का त्रिनेत्र और वृषभ वाहन के साथ उल्लेख भी महत्त्वपूर्ण है[९]। इस प्रकार आदिदेव के रूप में महादेव और दूसरी ओर आदिनाथ या ऋषभनाथ के रूप में तीर्थंकर की परिकल्पना के केन्द्र में कुछ समान तत्त्व और भारतीय चिन्तन के योग और साधना की मूल परम्परा देखी जा सकती है।

पुराणों में ऋषभदेव को आदिब्रह्मा, प्रजापति और विधाता कहा गया है जिसकी पृष्ठभूमि में **आदिपुराण** में वैदिक मान्यता के अनुरूप ऋषभदेव द्वारा भुजाओं में शस्त्र धारण कर क्षत्रियों की सृष्टि करने और उन्हें शस्त्रविद्या का उपदेश देने का सन्दर्भ वर्णित है। प्रजा के पालन तथा उनकी आजीविका की व्यवस्था के उद्देश्य से ही समाज में वैदिक धारणा के अनुरूप कार्य विभाजन और उस हेतु वर्णों की उत्पत्ति का भी संकेत किया गया है। क्षत्रिय के बाद ऋषभ के उरुओं से वैश्यों की तथा चरणों से शूद्रों की सृष्टि के सन्दर्भ मिलते हैं[१०]। इस सन्दर्भ में ब्राह्मणों की सृष्टि का अनुल्लेख सोद्देश्य और अर्थपूर्ण जान पड़ता है जिसे सभी तीर्थंकरों के अनिवार्यतः क्षत्रिय कुल से सम्बन्धित होने की परम्परा एवं वैदिक मान्यताओं (यक्ष, बलि, कर्मकाण्ड, जाति, ईश्वरवाद) को नकारने की पृष्ठभूमि में समझा जा सकता है।

जैन ग्रन्थों में नौ बलदेवों और नौ वासुदेवों या नारायणों की सूची भी महत्त्वपूर्ण और भागवत् प्रभाव का परिणाम है। इन्हें ६३ शलाकापुरुषों की सूची में सम्मिलित कर प्रतिष्ठित स्थान दिया गया[११]। बलदेव को वासुदेव का सौतेला भाई बताया गया है। [१२]बलदेवों की सूची में राम का भी नाम मिलता है। बलदेव के लक्षण स्पष्टतः संकर्षण या बलराम से सम्बन्धित हैं। नीलवस्त्रधारी एवं तालध्वज वाले बलदेव को गदा, रत्नमाला, मुसल या फल जैसे रत्नों का स्वामी बताया गया है जो बलराम के आयुध हैं[१३]। बलदेव के रूप में राम के निरूपण में धनुष और बाण का सन्दर्भ भी उल्लेखनीय है। **उत्तरपुराण** में वासुदेव को नील या कृष्णवर्ण, पीतवस्त्रधारी और गरुड़ चिह्नांकित ध्वज धारण करनेवाला बताया गया है[१४]। उपर्युक्त लक्षण स्पष्टतः ब्राह्मणीय परम्परा के वासुदेव कृष्ण से सम्बन्धित और उनका प्रभाव दर्शाते हैं। ज्ञातव्य है कि मथुरा की कुषाणकालीन अरिष्टनेमि प्रतिमाओं में तथा दिगम्बर स्थलों की नेमिनाथ की मूर्तियों में बलराम और कृष्ण का भी रूपांकन मिलता है। दूसरी ओर विमलवसही एवं लूणवसही जैसे श्वेताम्बर स्थलों पर कृष्ण की लीलाओं (कालियदमन, होली) आदि का शिल्पांकन किया गया है[१५]।

जैन परम्परा में इन्द्र को जिनों का प्रधान सेवक स्वीकार किया गया है। जिनों के पंचकल्याणकों एवं समवसरण की रचना के सन्दर्भ में इन्द्र की उपस्थिति का उल्लेख अनिवार्यतः हुआ है। **आदिपुराण** तथा **उत्तरपुराण** में इन्द्र को अनेक मुखों तथा नेत्रोंवाला (सहस्राक्ष) बताया गया है[१६]। पुष्पदन्त के **महापुराण** में इन्द्र के वाहन के रूप में गज (ऐरावत) के साथ ही वृषभ तथा विमान का भी उल्लेख मिलता है[१७]। **आदिपुराण** में ३२ प्रमुख इन्द्रों का सन्दर्भ के बिना नामोल्लेख आया है। इनमें १० भवनवासी वर्ग के, ८ व्यन्तर वर्ग के, २ ज्योतिषी वर्ग के तथा १२ कल्पवासी वर्ग के हैं[१८]। ऋषभदेव के जन्म के अवसर पर इन्द्र द्वारा विभिन्न प्रकार के नृत्य करने का सन्दर्भ भी महत्त्वपूर्ण है[१९]।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदिपुराण में ही इन्द्र द्वारा ताण्डव नृत्य करने का सन्दर्भ भी है जो स्पष्टतः नटेश शिव से सम्बन्धित है[२०]। छोटा कैलास (एलोरा) के गूढ़मण्डप के द्वार के अगल-बगल सौधर्मेन्द्र और ईशानेन्द्र का अंकन इस सन्दर्भ में महत्त्वपूर्ण है। कुछ श्वेताम्बर मन्दिरों पर चतुर्भुज नृत्यरत इन्द्र का रूपांकन भी मिलता है। विमलवसही (माउन्ट आबू) के उदाहरण में इन्द्र चार भुजाओं वाले हैं[२१]।

ओसियां, देलवाड़ा, कुम्भारिया, खजुराहो एवं अन्य स्थलों पर तीर्थंकरों के पंचकल्याणक के अंकन में इन्द्र का अनेकशः निरूपण हुआ है जिनमें इन्द्र अधिकांशतः चामर या कलशधारी हैं। जन्मकल्याणक के प्रसंग में शिशु-जिन को गोद में लिये, दीक्षाकल्याणक के प्रसंग में लुंचित केश लिये तथा समवसरण में प्रथम धर्मदेशना के अवसर पर इन्द्र की उपस्थिति देखी जा सकती है। नाडोल (पाली, राजस्थान) के नेमिनाथ, चित्तौड़ के समिध्धेश्वर एवं कुम्भारिया के मन्दिरों के कुछ उदाहरणों में नवजात शिशु (जिन) इन्द्र की गोद में है। चतुर्भुज इन्द्र के दो हाथ गोद में हैं और दो में उनका विशिष्ट आयुध अंकुश और वज्र प्रदर्शित हैं[२२]। इसके अतिरिक्त जैन मन्दिरों पर सर्वतः अष्ट-दिक्पाल समूह में भी इन्द्र का अंकन हुआ है, जिनमें गजवाहनवाले चतुर्भुज इन्द्र सामान्यतः त्रिभंग में हैं और उनके करों में वज्र एवं अंकुश के अतिरिक्त अभय या वरदमुद्रा तथा फल (या कलश या पद्म) प्रदर्शित हैं।

ब्राह्मणीय परम्परा की भांति जैनधर्म में भी कुबेर को भोगोपभोग की वस्तुओं का स्वामी बताया गया है। कुबेर की नियुक्ति इन्द्र द्वारा नगर की रचना करने व जिनेन्द्रदेव की विभिन्न प्रकार से सेवा करने के लिये की जाती है[२३]। तीर्थंकरों के जन्म के पूर्व कुबेर द्वारा जिन के माता-पिता के आंगन में रत्नों की वर्षा करने का उल्लेख मिलता है[२४]। लगभग आठवीं शती ई० से सभी क्षेत्रों के जैन मन्दिरों के उत्तरी कोण पर ब्राह्मण मन्दिरों के समान दिक्पाल के रूप में कुबेर का निरूपण हुआ है। ओसियाँ, खजुराहो, देवगढ़, कुम्भारिया, देलवाड़ा जैसे स्थलों पर सामान्यतया बृहद्जठर कुबेर को गजवाहन या निधिपात्र के साथ फल, पद्म, धन का थैला (नकुलक) लिये अंकुशधारी दिखाया गया है। उत्तरपुराण में कुबेर की पत्नी रति का भी उल्लेख मिलता है। नेमिनाथ एवं कुछ अन्य तीर्थंकरों के साथ यक्ष के रूप में भी कुबेर (या सर्वानुभूति) का अंकन हुआ है।

जैन देवकुल में लक्ष्मी की अवधारणा सर्वप्रथम **पर्युषणा कल्प** के "जिनचरित्र" (ईस्वी० ५०३/५१६) में जिनों की माताओं द्वारा देखे गये शुभ स्वप्नों के सन्दर्भ में "श्री लक्ष्मी" के रूप में मिलती है। **उत्तरपुराण** में भी जिनों की माताओं द्वारा देखे गये १६ शुभ स्वप्नों के सन्दर्भ में ही लक्ष्मी का उल्लेख आया है। इस ग्रन्थ में लक्ष्मी को पद्मों के सरोवरों की स्वामिनी और गजों द्वारा अभिषिक्त बताया गया है[२५]। जैन शिल्प में लक्ष्मी का मूर्त अंकन लगभग नवीं शती ई० के बाद से मिलता है जिसके उदाहरण खजुराहो, देवगढ़, ओसियाँ, कुम्भारिया एवं देलवाड़ा जैसे स्थलों पर हैं[२६]। इन सभी स्थलों पर लक्ष्मी को ब्राह्मण परम्परा में वर्णित लक्षणोंवाला ही निरूपित किया गया है। अधिकांशतः देवी को गज — या अभिषेक — लक्ष्मी के रूप में पद्मासीन और ऊर्ध्वकरों में पद्म तथा अधःकरों में वरद या अभयमुद्रा और जलपात्र (या फल) के साथ रूपित किया गया है।

प्रारम्भिक जैन ग्रन्थों में मेधा एवं बुद्धि के देवता या श्रुतदेवता के रूप में सरस्वती का भी सन्दर्भ प्राप्त होता है। **आदिपुराण** में सरस्वती का उल्लेख श्री, ह्री, कीर्ति, धृति, बुद्धि एवं लक्ष्मी जैसे ह्रद देवियों के रूप में आया है जिनका निवास विभिन्न पद्मसरोवरों में माना गया है। जैन शिल्प में सरस्वती की प्राचीनतम ज्ञात मूर्ति कुषाण काल की मथुरा के कंकाली टीला नामक स्थान से प्राप्त हुई है जो वर्तमान में राज्य संग्रहालय, लखनऊ में सुरक्षित है। सरस्वती का लाक्षणिक स्वरूप आठवीं शती ई० के बाद नियत हुआ[२७]। लगभग १०वीं-११वीं शती ई० में संगीत और अन्य ललित कलाओं की देवी के रूप में उन्हें मान्यता मिली और उनके हाथों में वीणा तथा मयूर-वाहन का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंकन प्रारम्भ हुआ। दिगम्बर सम्प्रदाय की अपेक्षा श्वेताम्बर सम्प्रदाय में सरस्वती पूजन अधिक लोकप्रिय था। यही कारण है कि बादामी, ऐहोळ एवं एलोरा जैसे दिगम्बर जैन स्थलों पर सरस्वती की मूर्तियाँ उत्कीर्ण नहीं हुईं। पूर्व मध्यकाल में श्वेताम्बर सम्प्रदाय में शक्ति के रूप में सरस्वती की साधना की गई जिसमें आगे चलकर तन्त्र का भी प्रवेश हुआ[२८]।

जैन परम्परा की सरस्वती के लक्षण ब्राह्मण परम्परा की सरस्वती के समान हैं। दोनों ही परम्पराओं में सरस्वती के करों में पुस्तक, वीणा, अक्षमाला, स्रुक्, अंकुश तथा पाश जैसे आयुध प्रदर्शित हैं। हंस या मयूरवाहना सरस्वती की नवीं से १२वीं शती ई० के मध्य की अनेक मूर्तियाँ देवगढ़, खजुराहो, ओसियाँ, कुम्भारिया, देलवाड़ा, तारंगा, जिननाथपुर, हुम्मच, हलेबिड जैसे स्थलों से प्राप्त हुई हैं।

जैन देवकुल में गंगा का उल्लेख भी देवी के रूप में हुआ है। **आदिपुराण** में चक्रवर्ती भरत का गंगाजल से अभिषेक करने का उल्लेख मिलता है[२९]। पुष्पदन्त कृत **महापुराण** में गंगा को पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान मुखवाली, कमलनयनी, कमलों के समान चरणोंवाली, जिनेन्द्र का अभिषेक करनेवाली, सिर में फूल गूंथनेवाली, चंचल मकरध्वजवाली एवं अपने रूप यौवन से देवों को आश्चर्य में डाल देनेवाली बताया गया है। पद्म को ही उनका छत्र एवं वस्त्र माना गया है[३०]।

प्रस्तुत अध्ययन से जैन धर्म में समन्वय की परम्परा के प्रमाण मिलते हैं। जैन **महापुराण** में शिव, विष्णु और ब्रह्मा के तीर्थंकरों के सन्दर्भ में नामोल्लेख एवं कुछ अन्य लक्षणपरक संकेत ९वीं-१०वीं शती ई० तक ब्राह्मण धर्म एवं कला में इन देवताओं के विशेष प्रतिष्ठा का प्रतिफल माना जा सकता है। यद्यपि तीर्थंकरों के प्रसंग में शिव, विष्णु और ब्रह्मा एवं अन्य देवताओं के नामोल्लेख लगभग ५वीं शती ई० से ही मिलने लगते हैं। विमलसूरि कृत **पउमचरिय** (ईस्वी ४७३) इसका एक प्रमुख उदाहरण है। उपरोक्त सन्दर्भ से स्पष्ट है कि **महापुराण** वस्तुतः पूर्व में स्वीकृत समन्वय की अवधारणा को ही और व्यापक आधार में प्रस्तुत करता है। ऋषभनाथ और शिव के बीच नाम तथा अवधारणा की दृष्टि से दिखाई पड़नेवाली एकरूपता विशेष महत्त्वपूर्ण और ब्राह्मण तथा जैन धर्मों के अन्तर्सम्बन्धों का सूचक है। ऋषभनाथ एवं अन्य तीर्थंकरों के स्तवन में कुछ ऐसे स्वरूपगत विशेषताओं का संकेत देनेवाले विशेषणों का प्रयोग हुआ है जिनका तीर्थंकरों के स्वरूप से कोई सम्बन्ध नहीं जुड़ता। शिव एवं ब्रह्मा के विशिष्ट लक्षणों से जुड़े त्र्यम्बक, त्रयाक्ष, चतुरानन आदि कुछ ऐसे ही शब्द हैं।

संगीत एवं अप्सराओं से जुड़े इन्द्र की कल्पना में उनके नृत्य स्वरूप का उल्लेख परम्परासम्मत माना जा सकता है। बलराम, राम और कृष्ण के उल्लेख में आयुधों एवं लक्षणों का भी कुछ उल्लेख हुआ है जो विभिन्न स्थलों पर उनके रूपांकन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण और ब्राह्मण परम्परा के अनुरूप हैं। **महापुराण** में तीर्थंकरों के लांछनों, यक्ष-यक्षियों एवं ऐसे ही अन्य देवस्वरूपों के आयुधों, लक्षणों का उल्लेख कहीं नहीं हुआ है। सम्भवतः इसका कारण **महापुराण** का एक कथापरक ग्रन्थ होना है। फिर भी ब्राह्मण धर्म के साथ समन्वय एवं तत्कालीन चिन्तन की दृष्टि से इन पुराणों का विषय, विशेषतः ब्राह्मण देवताओं की चर्चा, विशेष महत्त्वपूर्ण और प्रासंगिक है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संदर्भसूची :-

१. आदिपुराण, सं० पन्नालाल जैन, ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला, संस्कृत ग्रन्थ संख्या ८, वाराणसी १९६३, १२.६९,८५; १३.४७; १४.२०; १०३.१५४; २५.१००-२१७; उत्तरपुराण, सं० पन्नालाल जैन, ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला, वाराणसी १९६३ एवं १९६५, ६३.१६९; ६७.१४८-७२०; ७०.३६९-४९५; ७१.६-२२२.

२. आदिपुराण ३२.१६६, ३८.२१८; ४५.१५३-५५; उत्तरपुराण ५७.१७-३४.

३. भगवतीसूत्र, सं० घेवरचन्द भाटिया, शैलान १९६६, ३.१.१३४; अंगविज्जा, सं० मुनिपुण्यविजय, प्राकृत ग्रन्थ परिषद् १, बनारस १९५७, अध्याय ५१: द्रष्टव्य मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी, जैन प्रतिमा विज्ञान, वाराणसी १९८१, पृ० ३६.

४. तिवारी, जैन प्रतिमा०, पृ० ३७.

५. आदिपुराण २५.७३-७४, २१५; १७.६५.

६. महापुराण (पुष्पदन्त कृत), सं० पी० एल० वैद्य, मानिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला ४२, बम्बई १९४१, १०.५.

७. आदिपुराण २५.१००-२१७; १२.६९,८५; १३.४७; १४.१-२०, १०३; २२.१८-२२; ३८.२१; उत्तरपुराण ६३.१६९; ६८.८९-९०; २८२-८४; ५४.१७५; ७०.२७४; ७३.५६-६०; ९३.३६९-४९५; पउमचरिय, विमलसूरि, भाग १, सं० एच० याकोबी, अनु० शान्तिलाल एम० बोरा, प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी सिरीज ६, वाराणसी १९६२, ४.४; ५.१२२.

८. ऋषभ त्वं पवित्राणां योगिना निष्कताः शिवः। महाभारत, अनुशासन पर्व क्रिटिकल एडिशन, सं० प्रतापचन्द्र राय, पूना, कलकत्ता, गोरखपुर; श्रीमद्भागवत् १.३.१३ (हस्तीमल, पृ.५४); मार्कण्डेयपुराण ५०.३९-४०; शिवपुराण ४.४७-४८; कूर्मपुराण ४१.३७-३८; अग्निपुराण १०.१०-११; वायुपुराण, पूर्वार्ध ३३.५०-५१; ब्रह्माण्डपुराण, पूर्वार्ध अनुषङ्गपाद, १४.५९-६०; वाराहपुराण, अध्याय ७४; लिंगपुराण ४७.१९-२२; विष्णुपुराण, द्वितीयांश १.२७-२८; स्कन्दपुराण ३७.५७.

९. तिवारी, जैन०, पृ० १६५, १९३.

१०. आदिपुराण १६.२४१-४५.

११. उत्तरपुराण ५७.७२; ७०.२७४-९३.

१२. वरांगचरिय २७.४३, पृ०२६८; तिलोयपण्णत्ति १.४.१४११, पृ०३२८; उत्तरपुराण ५७.७१.

१३. उत्तरपुराण ५७.९३; ७१.१२३-२५. श्वेताम्बर परम्परा में वासुदेव को पाञ्चजन्य शंख, सुदर्शन चक्र, कौमुदकी गदा, शार्ङ्ग धनुष, नन्दक खड्ग, कौस्तुभमणि और वनमाला से तथा दिगम्बर परम्परा में असि, शंख, धनुष, चक्र, शक्ति, दण्ड तथा गदा से अभिलक्षित किया गया है जिन्हें वासुदेव का रत्न कहा गया है।

१४. उत्तरपुराण ५७.९०; ७१.१२३-२८.

१५. M. N. Tiwari, "Vaisnava Themes in Delwara Jaina Temples". *K. D. Bajpey Felicitation Volume*, Delhi 1987, p.195-200.

१६. आदिपुराण, १२.६९-७६, ८५; १३.४७; १४.२०; २२.१८; उत्तरपुराण, ६३.१६९.

१७. महापुराण (पुष्पदन्त कृत) ४६.१; ४८.९; ६२.१७

१८. आदिपुराण २३.१६३.

१९. आदिपुराण १४.१०३-५४; उत्तरपुराण, ५०.२३-२४.

२०. आदिपुराण १४.१०६-५८.

२१. U. P. Shah, "Minor Jaina Deities", *Journal of the Oriental Institute*, Baroda, Vol. XXXIV, Nos. 1-2, p. 46.

२२. तिवारी, जैन प्रतिमा०, पृ० ३३-३४,६१

२३. उत्तरपुराण ५४.१७५.

२४. आदिपुराण १२.८५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२५. उत्तरपुराण ५७.१७-३४.

२६. मारुतिनन्दन तिवारी, खजुराहो का जैन पुरातत्त्व, खजुराहो १९८७, पृ० ७४-७५.

२७. आदिपुराण ३८ ० २१८.

२८. तिवारी, जैन प्रतिमा०, पृ० ३३.

२९. आदिपुराण ३२.१६६; ४५.१५३-५५.

३०. महापुराण (पुष्पदन्त कृत), १५.९,११.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org